मेहनतकशों का पैग़ाम मेहनतकशों के नाम

मज़दूर मोर्चा

पाक्षिक

Email : mazdoormorcha@yahoo.co.in
www.mazdoormorcha.com

Postal Reg. No. L/H.R/FBD/463-06 /R.N.I. No. 66400/97

अन्ना ने दिखाया नया रंग: चल दिया सत्ता के संग? अवैध निर्माण: नेताओं व अफ़सरों की लूट का धंधा 3

इएसआईसी अस्पताल या मज़दूरों का काल विजिलैंस की कमी से बच निकलते हैं घूसखोर 4

न्यायपालिका में भ्रष्टाचार बिड़ला पर मुकदमा बनाम् देश का विकास 6

सी पी के आदेश एवं कानून की 'पालना' भारी पड़ी 2 थानेदारों पर 8

वर्ष 27 अंक 2 फरीदाबाद, रविवार, 1-15 दिसंबर 2013 फोन : - 9999595632 ₹ 2

जज ए.के. गांगुली, धर्मगुरु आसाराम, संपादक तेजपाल, सांसद धनंजय, भाजपाई 'प्रधानमंत्री' नरेन्द्र मोदी ने याद दिलाया

हर मर्द है संभावित यौन अपराधी

दिल्ली मज़दूर मोर्चा ब्यूरो

स्त्री के उत्पीड़न के तमाम रूपों में सबसे शर्मनाक रूप है यौनिक हिंसा का। लगता नहीं है कि भारतीय स्त्री को अभी दशकों तक इस हिंसा से छुटकारा मिल सकेगा। पिछले दिनों सुप्रीम कोर्ट के जज रहे और अब बंगाल मानवाधिकार आयोग के चेयरमैन ए.के. गांगुली का लॉ इंटर्न के साथ सामने आया पाशविक रवैया इसी सामाजिक सत्य को उजागर करता है। एक तरह से यौनिक हिंसा के खिलाफ़ लड़ाई में न्यायपालिका की अपेक्षाकृत बेहतर भूमिका भी इससे कलंकित हुई है।

धर्मगुरु आसाराम और उसके बेटे नारायण साईं के वहशियाना आचरण पर अभी थू-थू ठंडी नहीं हुई है। इन बाप बेटों के स्त्री उत्पीड़न के नये-नये किस्से रोज़ाना सामने आ रहे हैं। जब उनका मामला सामने आया तो शुरूआत में भाजपा और रामदेव जैसों का समर्थन उन्हें मिला पर जल्द ही सभी ने हाथ खींच लिये। राजनीतिक लोग तो वैसे ही निंदनीय माने जाते हैं। लिहाज़ा जब बसपा के बाहुबली सांसद धनंजय सिंह के अपने सहकर्मी की पत्नी से बलात्कार का मामला सामने आया तो किसी को ज्यादा आश्चर्य नहीं हुआ।

भाजपाई नैतिकता के 'शेर' नरेन्द्र मोदी के चेहरे को लम्पट रूप में देखना अजीब लगा एक महिला आर्किटेक्ट के वर्षों तक यौन उत्पीड़न का आरोप धीरे-धीरे मोदी पर चिपकता जा रहा है। यह प्रमाणित हो चुका हैं कि सन् 2004 से मोदी के सम्पर्क में आई इस महिला को राज्य द्वारा ठेके

जज एके गांगुली

धर्मगुरु आसाराम

संपादक तेजपाल

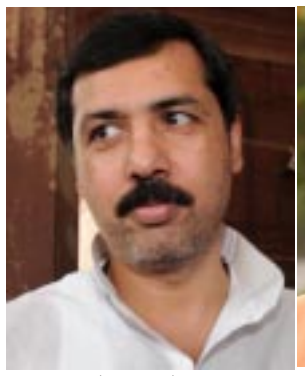

सांसद धनंजय

नरेन्द्र मोदी

दिलाकर मुख्यमंत्री मोदी द्वारा उसका यौन शोषण किया जाता रहा। जब वह तंग आकर मोदी से दूर हटने लगी तो गृहमंत्री अमित शाह की मार्फ़त मोदी ने उस पर चौबीसों घंटे निगरानी लगवा दी। आज तक उसे छिपाकर रखा गया है।

प्रतिष्ठित खोजी पत्रिका 'तहलका' के नामी संपादक तरुण तेजपाल पर अपनी ही एक जूनियर पत्रकार पर यौनिक हमला करने का आरोप जरूर सभी को आश्चर्य-चकित कर गया। एक सड़कछाप बदमाश के अंदाज में तेजपाल ने कई बार इस लड़की को धमकी दी कि नौकरी पक्की करने का यही सबसे सरल व तेज रास्ता है। अब वे खालिस मर्दाना अंदाज में लड़की को ही 'चरित्रहीन' बताने में जुटे हैं। प्रेस परिषद के चेयरमैन बड़बोले जस्टिस काटजू की चुप्पी क्या किसी के गले उतर सकती है?

इन वाक्यों पर क्षोभ कितना भी हो पर आश्चर्य करने की जरूरत नहीं है। क्योंकि यही लगभग हर प्रतिष्ठान और हर संस्थान की हकीकत है। दरअसल जितना नामी गिरामी संस्थान या प्रतिष्ठान होता है उतनी ही कम सूचनायें सार्वजनिक हो पाती हैं। अगर उक्त मामलों को ही देखें तो भी तस्वीर यही बनती है। जज एके गांगुली द्वारा सताई गयी युवा वकील भी शुरूआत में मामले को कानूनी अंजाम तक नहीं ले जाना चाहती थी। संपादक तेजपाल प्रसंग में पीड़ित की मांग को केवल तेजपाल द्वारा माफ़ी मांगे जाने तक सीमित करने की साजिश रही है। सांसद धनंजय के मामले में तो उत्पीड़ित महिला का पति ही धनंजय को क्लीन चिट दे रहा है और मोदी वाली महिला के पिता ने भी मोदी को 'क्लीन चिट' दे रखी है।

धर्मगुरु आसाराम के मामले में यदि उत्पीड़ित लड़की हिम्मत न दिखाती तो उसके अंधभक्त मां-बाप ने चुप रहने में ही भलाई को स्वीकारा हुआ था। क्या ये सारे मामले यह सिद्ध नहीं करते कि यौन अपराधों का कामुकता, लम्पटता, अशिक्षा, अपराधीकरण जैसी विकृतियों से उतना सम्बन्ध नहीं है जितना पुरुष की परिवार एवं समाज में स्त्री पर वर्चस्वकारी भूमिका से है।

शेष पेज 2 पर

'जाप' में ही न उलझी रहे 'आप'

ऐसे नहीं मरेगा करप्शन का सांप

'आप' पार्टी की पहचान करप्शन के विरुद्ध आम आदमी के मंच के बतौर मानी जाती है। आज चाहे बेशक अन्ना हजारे ने स्वयं को अरविंद केजरीवाल इत्यादि से अलग कर लिया हो पर असल मुद्दा अलग नहीं किया जा सकता। अन्ना ने जो जनआन्दोलन के माध्यम से पाना चाहा, केजरीवाल ने आम आदमी पार्टी (आप) बना कर उसे राजनीतिक जामा पहना दिया।

पर दोनों का 'जाप' एक ही रहा है, लोकपाल लाओ और भ्रष्टाचार मिटाओ। तर्क यह है कि भ्रष्टाचाररूपी राक्षस को लोकपालरूपी देवता के हाथों समाप्त कराया जा सकता है। यह सीधा समीकरण लोकप्रिय तो हुआ, पर सवाल यह है कि क्या यह कारगर भी होगा?

सर्वप्रथम हमें यह समझना चाहिये कि करप्शन एक व्यवस्था है न कि महज़ व्यक्तिगत कमज़ोरी। यदि यह महज व्यक्तिगत कमज़ोरी होता तो इस पर काबू पाने के लिये चरित्र निर्माण और लोकपाल जैसी प्रणालियां अवश्य सफ़ल होतीं। पर क्योंकि यह व्यवस्था है, इस पर एक प्रति-व्यवस्था से ही अंकुश लगाया जा सकता है। वांच्छित प्रति-व्यवस्था बनाने के क्रम में 'आप' को भी और अन्ना को भी करप्शन के स्रोतों और उसके निहितार्थों को पहचानना, होगा और उन पर चोट करनी होगी। जबकि उनका 'लोकपाल' केवल करप्ट पर चोट करता है न कि करप्शन पर।

आप पार्टी ज्यों-ज्यों चुनावी राजनीति के माध्यम से सत्ता की ओर कदम बढा रही है उसकी कमजोरियां भी सामने आने लगी हैं। भ्रष्टाचार के वही आरोप इस पार्टी के सदस्यों पर भी लगने शुरू हो गये हैं जो किसी अन्य राजनीतिक दल के सदस्यों पर लगते आये हैं चाहे वे झूठे ही हों। अभी तो केवल सत्ता की संभावना जगी है। जब सत्ता मिल जायेगी तो हश्र क्या होगा? जानकारों का तो यह भी कयास है कि यदि मौजूदा चुनाव के बाद आप पार्टी अपने तईं या गठबंधन की मार्फ़त दिल्ली में सत्ता में शामिल नहीं हो पाई तो इसके अधिकांश निर्वाचित विधायक किसी भी सत्ताधारी की गोद मैं बैठने में देर न करेंगे।

लगता नहीं है कि आप पार्टी की ओर से इन खतरों को आंका जा रहा है। यह इसलिये क्योंकि 'आप' के एक राजनीतिक पार्टी बनने की प्रक्रिया जजबाती और रूमानी ज्यादा तथा ढांचागत कम है। यदि करप्शन के मुद्दे पर राजनीतिक पार्टी बननी थी तो उसका ढांचा पूर्णत: लोकतान्त्रिक, पारदर्शी और जवाबदेय होना चाहिये था। 'आप' की ओर से इस दिशा में घोषणायें तो बहुत की गयी पर वास्तव में पार्टी का सारा ढांचा व्यक्ति-केन्द्रित होकर रह गया है। पार्टी के तमाम उम्मीदवार अरविंद केजरीवाल की मुहर से चुने गये हैं और चुनाव प्रचार में उनकी तस्वीर ज्यादा मुखर है बजाय मुद्दों के। वे हर चीज़ की जड़ करप्शन में ढूंढते हैं पर करप्शन की जड़ों की बात नहीं करते।

इस देश में भ्रष्टाचार के मुद्दे पर 1977 में जयप्रकाश नारायण को और 1989 में विश्वनाथ प्रताप सिंह को चुनावी सफ़लता दिलाई थी। उसका हश्र सबके सामने है।

शेष पेज 2 पर

ख़बर दार

सांप्रदायिक दंगों के उत्पीड़ितों की राहत का बिल कहाँ रह गया

मुजफ्फरनगर में अभी तक, नियोजित साम्प्रदायिक दंगों के तीन महीने बाद भी, शरणार्थी शिविरों में 50000 पीड़ित पड़े हुए हैं। यहाँ तक कि दंगों की मार्फत वोट ध्रुवीकरण की प्रक्रिया में लगी राजनीतिक पार्टियों, भाजपा और सपा ने दंगा कराने की डोर संचालित करनेवालों को सार्वजनिक रूप से सम्मानित करना भी शुरू कर दिया है।

केंद्र की कांग्रेसी सरकार भी यह बताने में असमर्थ है कि सांप्रदायिक दंगों के तमाम पक्षों को लेकर विशेष बिल जो 2011 से उसके पास विचाराधीन है, कब कानून की शक्ल लेगा। जाहिर है कांग्रेस का यह अनिर्णय भी चुनावी राजनीति से ही प्रभावित है।

प्रस्तावित बिल में मुख्यत: जोर सरकारी मशीनरी, विशेषकर कानून-व्यस्था एवं न्याय-व्यवस्था के अंगों, को जवाबदेह बनाने और पीड़ितों की राज्य द्वारा क्षतिपूर्ति पर है। 'क्षतिपूर्ति', सारी दुनिया में मान्य प्रणाली है जो पीड़ितों में राज्य की अपने नागरिकों की सुरक्षा के प्रति भूमिका को लेकर सकारात्मक सन्देश पहुँचाती है। साथ ही, तुरंत एवं अनिवार्य क्षतिपूर्ति होने से अपने भविष्य को लेकर पीड़ितों की मनोदशा भी अपेक्षाकृत स्थिर रहेगी। यद्यपि, पीड़ितों की क्षतिपूर्ति से दंगाइयों के इरादों या उनकी कारगुजारियों के ऊपर कोई नकारात्मक या रोकथामवाला प्रभाव पड़ेगा, इसका कोई प्रमाण या माडल नहीं मिलता। 'जवाबदेही' का प्रभावी माडल लालू यादव के शासन में बिहार राज्य में नजर आया। वोट समीकरणों के चलते वहाँ अल्पसंख्यकों को शासन ने साम्प्रदायिक दंगों के भय से मुक्त रखा। इसे सम्भव करने के लिए, तनाव के समय, स्थानीय प्रशासन की जिम्मेदारी पर लगातार निगरानी स्वयं सीधे मुख्यमंत्री के स्तर पर की जाती थी। साम्प्रदायिक शांति, दरअसल, उनकी कुर्सी की अनिवार्य शर्त बन गयी थी जिसे लालू शासन बखूबी निभा भी सका। यूं यह आश्चर्यजनक ही लगेगा क्योंकि लालू यादव का विकास-विरोधी शासन अन्यथा देश के सबसे निकम्मे शासनों में गिना जाना चाहिए।

शेष पेज 2 पर